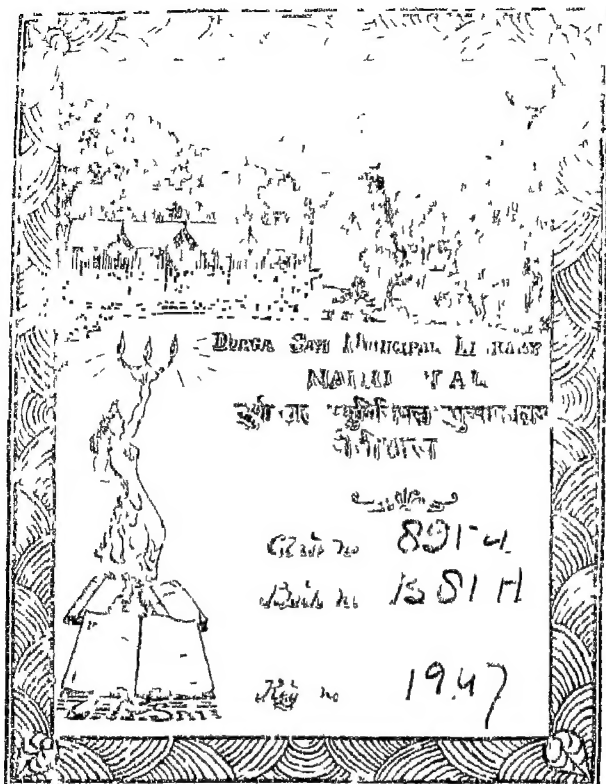


Durga Sah Municipal Library
Naini Tal
Book No. 1581 H
Reg. No. 1947

आँसू भरी धरती

श्री ब्रह्मदेव

कालिन्दी प्रकाशन, दिल्ली
१९४८

लेखक की अन्य कृतियाँ

निशीथ, नील अंगार, चित्रशाला, निर्जन पथ,
क्रन्दन, सन्ध्या, यात्री...

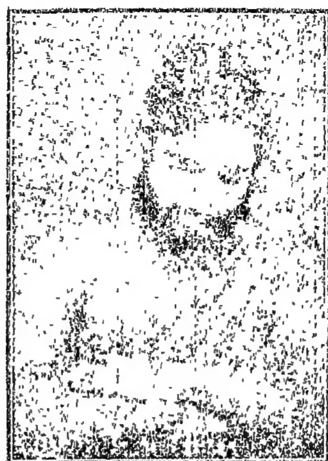
प्रथम संस्करण

साढ़े छ रुपया

प्रकाशक
कालिन्दी प्रकाशन के लिए
हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कम्पनी, चाँदनी चौक, दिल्ली

मुद्रक
पियरसन्स प्रेस, दरियागंज, दिल्ली

पूज्य बापू तथा गुरुदेव की
पवित्र स्मृति में



ब्रह्मदेव

"एक तेजस्वी तरुण तपस्वी, अभाव ही उसका भाव, साधना ही उसका साधन है। कला की अर्चा उसके जीवन का व्रत, त्याग और तपस्या उसके जीवन का आदर्श है। विनयवश वह अपने को सबमें मिलाकर देखता है पर तब भी वह—उसका व्यक्तित्व सबसे पृथक् दिखता है। उसकी सर्वश्रेष्ठ विशेषता है—सर्वप्रियता। उसकी प्रतिभा बहुमुखी है। हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत का अध्ययन, काव्य-कथा-लेखन, चित्रांकन तथा मूर्तिकला आदि सबकी साधना वह एक ही साथ करता रहा है। क्या साहित्य, क्या चित्रकला, सबको वह केवल शास्त्रीय परम्परा से नहीं, किन्तु अपनी निजी दृष्टि से देखना चाहता है—अपनी सुरुचि से सृष्टि करना चाहता है। उसने शत शत कविताएँ की हैं, कहानियाँ लिखी हैं—चित्र बनाए हैं। निश्चय ही अभी उसका वास्तविक-विकास किसी ओर सुस्पष्ट नहीं हो पाया है, पर इसका कारण उसमें असाधारण उदार प्रतिभा का अभाव नहीं है। उसने देश-सेवा में भी सक्रिय योग दिया है। १९३० से १९३३ तक वह चार-चार बार जेलयात्रा कर चुका है। सहृदय समाज के साथ मैं उसके सर्वश्रेष्ठ विकास की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

—आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री

अनुक्रम

आँसू भरी धरती

आँसू

भरी

धरती



देव !

तुम्हारा अमृत कहाँ है — मृतकों से रणस्थल पट गया है; तुम्हारा वज्र कहाँ है—स्वर्ग आक्रान्त हो गया है और तुम्हारे अग्रणी का रथ कहाँ है जिस पर शिव का पुत्र कार्तिकेय विराजमान है ?

हिमालय, तुम्हारे तुषार के स्रोत समुद्रों को भी लांघें !

भारतवर्ष, तुम्हारी गोद में आहत विश्व को छाया मिले !



राक्षस !

आज तुम भले ही आकाश की निर्मलता को चीरते हुए चलो; कल तुम उसकी शून्यता में विलीन हो जाओगे।

आज तुम भले ही शान्त समुद्र के हृदय पर अपने लौह चक्र का ताण्डव सृष्ट करो; कल तुम्हारा स्वर्ण-मुकुट लहरों के अंधकार में डूब जायगा।

आज तुम भले ही सुन्दर पृथ्वी को श्मशान से पाट दो; कल तुम्हारा प्रासाद बिना क्रंदन का खँडहर बन जायगा।



भगवान् बुद्ध के देश !

विश्व के हृदय पर इस समय अग्नि की वर्षा हो रही है। इसे फिर अमृत से सींचना होगा।

विश्व के आलोक पर अंधकार ने अपना आवरण डाल दिया है; इसे स्नेह के प्रकाश से छिन्न-भिन्न करना होगा।

और विश्व के माधुर्य पर नर-हत्या का ध्वंस-स्वर प्रखर हो उठा है; इसे शान्ति की वीणा से पुनः संजीवित करना होगा।

हिमालय के तुषार, गंगा की पवित्र धारा और भगवान् बुद्ध के देश! तुम अब अपनी प्रकाश-यात्रा का तूर्य मुखरित होने दो!



सैनिक

सन्ध्या जब सिन्धु-तीर से होती हुई आगे बढ़ जाती है; रात्रि अंधकार में कराह उठती है और लहरें जब अन्तिम उन्माद में तट से टकराने लगती हैं, उस समय भी उनके विश्राम का कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ता।

ऊषा जब प्रकाश का गीत गाती हुई जागती है; पक्षी-शावक जब जग कर उद्यान में मंगलगान करते हैं और जब स्वप्न से धुलकर जीवन आँख खोलता है, उस समय भी उनका रक्त-रंजित शरीर अपनी मूर्च्छा से नहीं जागता।

सन्ध्या का विश्राम, प्रभात का जीवन और मध्याह्न का आलस्य, हाय, उनसे किसने छीन लिया है ?



माँ !

माँ, मैं तुम्हारा प्रहरी रहूँगा। हाँ, अग्नि की वर्षा में भी तुम्हारे मन्दिर का द्वार किसी को तोड़ने नहीं दूंगा।

वायु में जो प्रलय का स्वर गूंज रहा है, दूर और समीप से जो अस्त्र-शस्त्रों की झनकार आ रही है और समुद्र तथा पृथ्वी पर जो मृत्यु की सेना घिर रही है, वह थक कर अन्त में मूर्च्छित हो जायगी। माँ, उस समय मैं आहतों के लिए तुम्हारे स्नेह और शान्ति का अमृत बाटूँगा। माँ, मैं तुम्हारा प्रहरी रहूँगा।



अस्त रवि

१

हे नन्दन-कानन के विहग ! तुम अपने स्वर्ण-नीड़ को उड़ गए।

गिरि, गहन, सिन्धु-कूल, समस्त धरा, अंधकार, आलोक, छाया-पथ सब पर तुम्हारी अतन्द्र रागिनी अमृत की वर्षा करती गई है।

हे वन्दनीय बन्धु ! तुम अपना कार्य समाप्त कर अपने एकान्त सिन्धु-तीर को लौट गए।

मानवीय जीवन की मरु-धारा ने अपने हाहाकार से तुम्हारी वन्दना की। हे शिव, जान पड़ता है, इस कारण ही तुम्हारी सुधामयी वाणी की गंगा फूट निकली।

हे निर्वासित एकाकी यक्ष, तुम अपने मर्त्य अभिशाप की अवधि पूरी कर अपनी अलका को लौट गए।

जीवन की शुभ्र शिला पर बैठकर तुमने विरह के अनन्त आख्यान लिखे और अपने आँसुओं की माला से काल-दिग् का अभिनन्दन कर सहसा एक दिन अपना नीड़ खाली कर चल दिए।

हे चिर प्रवासी ! तुम चले गए किन्तु प्रेम और सौन्दर्य की तुम्हारी वीणा इस विश्व-कुटीर में सदा के लिए मुखरित रह गई।

अस्त रवि

२

ओ, राजकीय आवास, तुमने अपने सब द्वार क्यों उन्मुक्त कर दिये ; वह एक दिवास्वप्न की भांति चुपचाप पार हो गया।

ओह, तुम लोग जो यहाँ इतने एकत्र हो रहे थे, क्या उसकी ही वाणी में उसका अवरोध न कर सके—"आमि जाते दिब ना तोमाय" ......

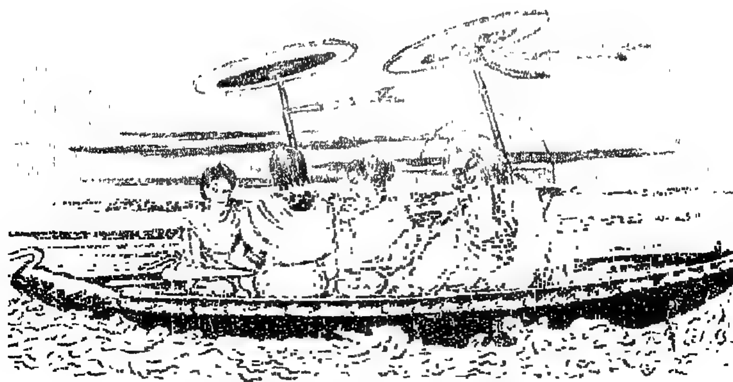
मूक स्तम्भ, मुक्त नील वातायन, तुम सब किस निद्रा में थे ? वह तुम्हारे बीच से एक अन्तरनादी संगीत के साथ प्रस्थित हो गया और उसके पद-चाप अन्तरीक्ष के पथ पर भी निस्तब्ध रहे।

वह मुड़ा नहीं और उत्फुल्ल दिवा-ज्योति में विलीन हो गया। कक्ष में बैठी हुई कुमारियाँ जो वीणा पर प्रार्थना-स्वर में गा रही थीं—अपने संगीत की मूर्च्छना में निश्चल हो गईं। उनका वह अशान्त अतिथि विदा ले चुका था और उनके संगीत की अब कोई आवश्यकता न थी। वे धीरे से उठकर अलिन्दों में जा खड़ी हो गईं। उनकी दृष्टि के आगे नील गम्भीर आकाश की शून्यता मात्र थी।

अब हम उसे नहीं देख सकेंगे। उसका पथ मध्याह्न
के प्रकाश में निमज्जित हो गया है और उसका
मुख जो धरित्री पर इतने युग तक एक मधुर
पद्म सा खिला रहा, स्वर्गीय किरणों के
चुम्बन में अस्पष्ट हो गया है।

अब हम उसकी वाणी नहीं सुन सकते। श्रावण की
यौवनवती दक्षिणी वायु उसे अपनी नौका पर
बिठा ले गई है। वह उसकी वीणा से कढ़ती
हुई एक मर्म-रागिनी बन कर उसके साथ उत्तर
पथ की यात्रा करेगी।

ओ शान्ति के संदेश-वाहक, इस व्यथित पवित्र धरती
के कवि, तुम इस प्रकार विदा हो गए किन्तु
अपनी मातृ-भूमि और निखिल मानव-परिवार
के लिए तुम्हारे उपहार अमर रह गए।



किरणें बोलीं

सन्ध्या

युग-प्रतीची के दुर्ग की चूड़ा पर बैठा वृद्ध रवि सामने के प्रशान्त जल-प्रदेश की ओर देख रहा है। उसकी आँखों में अपनी प्रकाश-यात्रा का चित्र संचित है। दिशाएँ अब तक किरणों की सुरा पी रही हैं।

रवि :

—प्रशान्त सरोवर पर जो खिले हुए कमल थे, वे मुँदने जा रहे हैं। रात्रि के नील-अंचल में उनकी हँसी धीरे-धीरे ढक जायगी। अंधकार में उगे हुए स्वप्न की तरह वे अस्पष्ट हो जायेंगे। आह, उषा की स्मिति, मध्याह्न की शान्ति और सन्ध्या की मदिरा पर किसने गरल उँड़ेल दिया ?

किरणें थकी हुई नृत्य करती हैं, रात्रि का स्वर दिगन्त में बहता हुआ सुनाई पड़ता है।

रवि :

—भोली किरणो, दिवस की इस जर्जर वेला में तुम्हारी वीणा की रागिनी कितनी निर्बल है! चलो, चलें, लहरों के नील-कानन में हमारा स्वागत होगा। रात्रि से पराजित जीवन के द्वार पर मेरी आँखें अब और कुछ न देखें।

अस्त रवि की नौका खेती हुई किरणों चली जाती है। समुद्र में अंधकार गुम्फर हो उठता है।

रात्रि

लहरें सो रही हैं। फूलों पर निर्भय स्वप्न खेल रहे हैं। हिमालय के शिखर पर निश्चल ध्यान की तरह तुषार जमा हुआ है। ज्योत्स्ना के तारों से एक रागिनी फूट रही है।

रात्रि की आत्मा :

—यह स्वर असह्य है। इसमें प्रकाश की छाया है, कुमुदों की हँसी है और शान्ति का माधुर्य है। मेरे अट्टहास की झंझा में ··· देखो ··· ···

रात्रि की आत्मा जाग पड़ी है। वह दिशाओं को रौंद रही है। कमलों के दल बिखर गए हैं और निश्चल जल-राशि पर प्रलय कम्पित होगया है। पृथ्वी के वन उपवन और नीड़ों में चीत्कार व्याप्त हो गया है, हवा त्रस्त हो गई है और तट की छाया में कुचली हुई लहरें रो रही हैं। यह सब इसी अंध दानवी की लीला है। हाय, कमलों का वन उजड़ गया, ज्योत्स्ना का संगीत भंग हो गया और यह अशान्त रात्रि झंझा-स्वर में अट्टहास कर रही है।

प्रभात

अनगिनत किरणें सुनहले पंखों से उतर रही हैं। दूर पर कुहरे में ढका द्वीप-पुंज दिखाई पड़ रहा है। किरणें आगे बढ़ रही हैं।

पहली किरण :

मुझे धक्का मत दो। देखती हो, लहरें घायल होकर लौट रही हैं। इनके तन-बदन पर रक्त के छींटे हैं। आह, किसने इन्हें आहत कर दिया? कल-तक इनकी प्रशान्त नीलिमा पर हम सब नाच रही थीं। धीरे-धीरे उतरो, प्रभात के अमृत से हम इन्हें जीवन देंगी। रात्रि के समय जब अंधकार ताण्डव कर रहा था, नक्षत्रों के प्रदीप बुझ गए थे और ध्वंस के रथ से पृथ्वी और सागर का हृदय कुचल गया था, उस समय हम सब सो रही थीं। हमारे पंखों से दिशाओं में पुलक भर रही है।

दूसरी किरण :

—कुहरे की ओट में यह विशाल-काय दानव किसी श्मशान के निकट पड़ा दीखता है। यह रात्रि के उच्छ्वास की तरह मलिन और स्तब्ध है। यही है प्रकृति के सौन्दर्य का शत्रु, मानव की चरम उन्नति और पतन का चित्र। आओ, इस अंधकार-युग की स्मृति को ढँक दें······हम इसे अपने प्रकाश में छिपा दें।

तीसरी किरण :

—ज्ञात होता है, लहरें हमें चूमना चाह रही हैं, सब झुको, उनके साथ हम नाचें। सामने के स्थल-आवासों के वन उपवन जाग गए हैं। रात्रि मूर्च्छित हो गई है। किसलय और मुकुलों को सहलाती हुई हवा हम सबों की बाट जोह रही है। जल-गर्भ में नये-नये उत्पल ऊपर आकर अपने स्नेह-भरे मुख से हमें पुकार रहे हैं।

चौथी किरण :

—वह दूर पर देखो, हिमालय का तुषार शिखर, तपस्या में अब तक निश्चल बैठा है। चलो, वहाँ हमारा प्रभात का सामगान होगा।

पाँचवीं किरण :

दिशाओं में तूर्यनाद हो रहा है। रात्रि का युग शेष हो गया। विश्व का पद्‌म फिर से खिल उठा है। स्नेह के चेतन उन्माद में पृथ्वी, समुद्र, आकाश, वायु और प्रकाश एक आलिंगन में बँध गए हैं। चलो, हम फिर हिम-शिखर पर नाचें।

हिमालय पर मंगल-प्रभात, रात्रि के आहत विश्व को किरणें सोम पान करा रही हैं।

अपूर्ण मानव

जब आकाश में यन्त्र का पक्षी आग उगलता है, तब वह अपनी नीलिमा में और उदास हो जाता है।

जब सिन्धु के गंभीर जल के नीचे मनुष्य एक दूसरे का आखेट करता है, तब लहरें भय से एक ओर सिमट जाती हैं।

और जब निरपराध शिशु, युवा, स्त्री और वृद्ध के रक्त से भूमि रँग जाती है तो हवा चीख उठती है।

अपूर्ण मानव, वह समय दूर नहीं, जब तुम्हें अपने पाशवी कृत्यों पर पश्चात्ताप करना होगा। उस समय सम्भवतः तुम्हारे आँसुओं के सिन्धु से भी इस कालिमा का प्रक्षालन न हो सकेगा।

क्रान्ति करो

क्रान्ति करो — निर्दोष बहे हुए रक्त की प्रार्थना है।

क्रान्ति करो — युवकों की हत्या प्रेरित करती है।

क्रान्ति करो — माँ बहनों की आँखों में भरे हुए आँसुओं की वाणी है।

और क्रान्ति करो — क्षुब्ध दिशाएँ, आहत समुद्र और रक्त से रँगी धरती की पुकार है।

क्रान्ति हाँ, क्रान्ति — किसके विरुद्ध ?

रक्त के प्यासे पशुओं के विरुद्ध क्रान्ति करो। अपने स्वार्थ की भट्टी में दूसरों के रक्त होमने वालों के विरुद्ध क्रान्ति करो। संसार के होनहार कोमल बच्चों को कुचल कर अपनी विजय-पताका उड़ाने के सपने देखने वालों के विरुद्ध क्रान्ति करो।

संसार के समस्त देश के नौनिहालो, क्रान्ति करो। विश्व के समस्त योद्धाओ, असहाय मानवता की रक्षा के लिए अपने झूठे स्वार्थ से उठकर युद्ध की आग से विद्रोह करो। विश्व के आने वाले अच्छे दिन के लिए अपनी पशुता के विरुद्ध क्रान्ति करो।

ओ पथ-भ्रान्त भद्र नागरिकों, अपने अपने सुन्दर देशों को लौट जाओ और तुम्हारे हाथ में जो ये घृणित अस्त्र-शस्त्र दँग रहे हैं — इन्हें दूर फेंक दो। क्या तुम सभी एक ही मानव परिवार के नहीं हो ? तुम्हारे पारस्परिक स्नेह-माधुर्य का स्वर्ग तुम्हें पुकार रहा है।

शरणार्थी

वे भागे आ रहे हैं—उनका घर जला दिया गया है।
उनका सर्वस्व स्वाहा हो गया है।
वे भागे आ रहे हैं—आग की लपटों में वे झुलस
गए हैं। उनके अबोध शिशु बमों की आवाज़
से मर गए हैं और उनके प्राण में भी प्यारे
साथी छूट गए हैं।
वे भागे आ रहे हैं—आराम से नहीं। उनका पथ
जंगलों और पर्वतों का था। भूखे और प्यासे
आ रहे हैं वे। ऊंची चढ़ाइयों से थक कर
उनमें से बहुत विश्राम के लिए रुक गए हैं और
वे कभी न उठेंगे। सद्य:जात कितने शिशुओं
को माताओं ने वहीं छोड़ दिया है, निर्दय बन
कर नहीं, वे उन्हें ढो नहीं सकती थीं और
माँ पृथ्वी ने उन्हें अपनी गोद में ले लिया है।
वे हवा की ठंढी चादर के नीचे सुख से सो रहे
होंगे।
वे भागे आ रहे हैं—एक घूंट जल पीकर पचासों
मील तय करते हुए, अपने साथी, संगिनी,
वृद्ध और बच्चों को किसी जलाशय के तट पर
मुँदे हुए कमलों की भाँति विश्राम करते हुए
छोड़कर, दीर्घ उच्छ्वास और कांपती हुई स्मृति
में उन्हें पुकारते हुए।
वे भागे आ रहे हैं—उनका घर नहीं है। उनके लिए
भोजन नहीं है। उनके पास वस्त्र नहीं है। वे
हमारे ही भाई हैं—वे हमारी ही माँ-बहनें हैं।

वीणा की रागिनी बन्द कर दो

वीणा की रागिनी बन्द कर दो, तुम्हारे घर में आग लग गई।

गीतों की कम्पन पर एक बार महायात्रा का आरोह झंकृत कर दो और एक उन्माद में भर कर बाहर निकलो।

तुम्हारे आँगन में जो दानव पल रहा था, आज प्रलय मचाने को उद्यत हो गया है।

शान्ति के देवदूतो, उठो और आसिन्धु विस्तार तक फैले हुए दानवत्व का उच्छेद करो। हाँ, देर मत करो। वज्र-निनाद में तुम्हारा बलिदानी मार्ग तुम्हें पुकार रहा है। दौड़ो, इस पुकार की अवहेला मत करो।

मृत्यु की मालाओं से सजकर माता का रथ आगे बढ़ा जा रहा है। आगे आओ, अपराजित हृदय और निर्भय मुसकान के साथ आगे बढ़ो।

वीणा की रागिनी बन्द कर दो, तुम्हारे घर में आग लग गई है।



साथी

साथी, तुम लेट गए; माता के स्नेह-शील हृदय पर
लेट गए।

शत्रु के अस्त्र ने तुम्हारा वक्षस्थल विद्ध कर स्वतन्त्रता के प्रति तुम्हारा प्रेम अंकित कर दिया है और तुम्हारे हृदय से बहती हुई रक्त की धारा तुम्हारी वीरता की कथा लिख रही है।

तुम्हारी मुद्रित आँखों में उन्मुक्ति का मन्त्र विश्राम कर रहा है और तुम्हारे नील-मलिन होठों से जैसे अपनी मातृ-भूमि के लिए प्रणाम कह कर दिगन्त में बिखर गया है।

साथी, तुम्हारे माता पिता और भाई बहन आज तुम्हें फूलों से अन्तिम बार सजाकर अपने स्नेह-दीप का निर्वापन करेंगे और तुम्हारी पवित्र स्मृति को राष्ट्र अब से अपने आँसुओं की माला से सज्जित रखेगा।

साथी तुम लेट गए; माता के स्नेह-शील हृदय पर
लेट गए।

यन्त्र दानव

यन्त्र-दानव के चक्र के नीचे हमारा सुख-स्वप्न, विश्राम-शान्ति आज कुचल गई है। विज्ञान की आराधना कर हमने जो अलभ्य और असम्भव वरदान प्राप्त किए हैं, आज उन्हीं से हमारा आवास राख की ढेर बनने पर तुला हुआ है।

चन्द्र-लोक से अमृत-कलश लेकर हमारा कोई दुस्साहसिक यात्री अभी नहीं लौटा; अन्य ग्रहों में हमारे उपनिवेश भी अभी नहीं बन पाए; प्रकृति के सम्पूर्ण स्नेह-लोक की परिक्रमा तक भी हमसे नहीं हो पाई किन्तु आज हमारा भविष्य अंधकाराच्छन्न हो गया; हमारा आत्म-विश्वास खो गया और हमारा यह सुन्दर मानवीय जीवन चिता की लहरों से घिर गया।

हमारे आनन्द के दीर्घ विस्तार को किसने रौंद दिया है? नील निर्मल आकाश से हमारे शान्त स्थिर जीवन को विद्युत् की निर्मम रेखा के समान कौन बेधकर पार हो रहा है? आज मनुष्य का रक्त, ऊँची काली चिमनियों से धूम्र-माला बनकर उड़ा जा रहा है।

महा निष्क्रमण

यह निष्क्रमण किस लिए है ?

माता के स्नेह-शील पुत्र, बहन के प्यारे भाई, पत्नी के जीवन-सर्वस्व पति आज अपने स्नेह, विराम और शान्ति से दूर-बहुत दूर भयानक अग्नि, अतल जलराशि और अकूल अनन्त आकाश पर मृत्यु के सहचर बन कर घूम रहे हैं! उनके आगे उनका जीवन एक भयानक, निराश एवं दुर्धर्ष स्वप्न की भाँति समय के खर प्रवाह में तैर रहा है और वे बिना रुके हुए अथक चाल से मृत्यु का रथ हाँके चले जा रहे हैं।

माताओं, बहनों, प्रेम-पात्रियों तथा भोले अनाथ शिशुओं की विस्फारित आँखों में उनको लौटा लाने का मूक आग्रह भरा हुआ है, किन्तु निष्ठुर पुकार पर कढ़े हुए योद्धा नहीं लौट रहे!

हाय, उनका यह महा निष्क्रमण किस लिए है ?

निशाचर

इस अर्द्ध-रात्रि में इन तरुणों को किस देश-भक्ति ने,
किस वीरता के भाव ने और किस मानवीय
वेदना ने इस विश्राम के क्षण में अनिद्र कर
रखा है ?

हृदय का जो उत्तर है वह कितना मलिन है—जुगुप्सा
से युक्त और तीर सरीखा बेंधने वाला······!
यह स्पष्ट है — ये निशाचर इस समय अपनी
वासना पूरी करने के लिए कहाँ जा रहे हैं।
इनकी मानवता, इनका धर्म-आचार, इनका
जीवन अस्त्र-शस्त्रों की झंकार में, मांस के
लोथों और दुर्दान्त कृत्यों में खो गया है।
इनका जीवन मदिरा की छाया में किसी सुन्दरी
या असुन्दरी नारी के आलिङ्गन की भूख
से व्याकुल है।

ओह ! आखिर ये विदेशी हमारे ही नगर के किसी
भाग में जा रहे हैं। इनकी पाशविक अभ्यर्थना
में हमारे ही देश की शत-शत ललनाएँ होंगी।
और ये बेबस दरिद्र इक्केवान केवल कुछ पैसों
के लिए इन्हें अपने ही देश की इज्जत लूटने के
लिए किसी द्वार पर उतार आयेंगे। हम
राहगीर यह सब कुछ समझते हुए भी सन्ताप
की सांस लेते हुए मौन चलते रहेंगे।

सुहृत्कूल

बापू,

दिग-बन्धन शिथिल हो गए हैं और प्रभात-समीर सिन्धु-तल पर एक मुक्ति का संदेश ढोती हुई बह रही है।

शान्त सैकत-तीर यात्रियों से अपना पग-चिन्ह छोड़ जाने का आग्रह कर रहा है और जल-पक्षी ऊपर आकाश में उठकर किरणों से अन्तर्लोक की कथा पूछ रहे हैं।

क्षितिज के दुकूल पर शीघ्र ही उसका रथ दिखाई पड़ेगा जो इस विश्व को अंधकार की कारा से मुक्त करेगा।

किन्तु बापू!

तुम क्या सोच रहे हो:—मनुष्य ने अपने आवास के द्वार बन्द कर रखे हैं और उसके निविड़ कक्ष में अस्त्र-शस्त्रों की झंकार और शृंखला के रणरण के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आज मनुष्य की आंखें उन पग-चिन्हों को नहीं पहचान पा रही हैं जिन्हें पितृ-मन्दिर के यात्रियों ने छोड़ रखा है। और आज मनुष्य अपनी अशान्ति में उस महा-अतिथि का आह्वान सुनने में असमर्थ है जो उसके द्वार पर अमित प्रकाश का दान लेकर उपस्थित हुआ है।

दो समाधियां

इन वृक्षों के नीचे खड़ी हो जाओ सन्ध्ये, शाखायें झुक कर तुम्हें अपने फूलों की अंजलि भेंट करेंगी।

दिशाओं के अंकुत पथ पर धीरे-धीरे पग बढ़ाओ रजनी, आकाश तुम्हें अपने आवास की निखिल दीपमालिका अर्पित करेगा।

मलय-गिरि से उतरकर प्रार्थना के मन्द स्वर के साथ तुम कुटीर-कुटीर पर रुको समीर, भारत के प्रत्येक पिता, पुत्र, जननी, कुल-वधू और शिशुओं का कम्पित स्वर-स्रोत तुम्हें आलिंगित करेगा।

और तुम सभी इन दो समाधियों की अर्चा में उपस्थित होओ जो इस विशाल बन्दीगृह के पार्श्व में भारत की चिर उन्मुक्ति के स्मृति-स्वरूप माता और शिशु के समान एक साथ पड़ी हुई हैं।



नोआखाली

गुरुदेव, तुम्हारी कविता-भूमि को सभ्यता के शत्रुओं
ने पैशाचिक नृत्य के घोर रव से घेर रखा है।
तुम्हारी कविता जिन शान्त, प्रसन्न ग्राम-
वीथियों से, कदली और चम्पक के उद्यानों से,
स्वर्ण-शस्य से भरी हुई नौकाओं के पथ से राशि-
राशि सौन्दर्य का चयन करती फिरती थी, उन्हें
ही बर्बर आततताइयों ने रौंद डाला है और यहां
उनकी जलाई हुई आग धू-धू कर रही है।

अब वहां देवालय के द्वार पर किसी आराधना-कम्पित
माता का, भक्तिनमित युवती का या कुसुम-
स्तबक लिए किसी ग्राम-किशोरी का चित्र नहीं
है। वहाँ आज अपहृत, लांछित और भू-
लुण्ठित अबलायें सिसकियाँ भर रही हैं।

अब वहाँ कहीं पल्ली-वासियों के समवेत सङ्गीत और
वाद्य की ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती, उनके उजड़े
हुए, भस्मसात और जन-शून्य गृहावशेषों में
आज नृसंशतम लीलाओं की स्मृति चुपचाप
सांस ले रही है।

शान्ति और सौन्दर्य के सन्देशवाहक, तुम्हारे उदय से बंगभूमि में जो एक संस्कृति का पद्‌म विकसित हुआ था उससे भारत ही नहीं, विश्व आमोदित हो गया था; किन्तु वह आज इस दारुण परिताप से मुरझा गया है।

आज तुम्हारी साधना की भूमि पर क्रूर अपधर्मी अभागी नारियों को अपमानित कर अट्टहास कर रहे हैं। इस कृतघ्नता का उदाहरण मानव इतिहास में अकेला ही रहेगा।

हा बंगाल, तुम्हारी करुणा और वेदना की इस अतल आवर्तित धारा पर पुनः कोई पद्म खिलता ! तुम्हारी सन्तान का फिर प्रभात होता !



युगावतार

बापू, तुम्हारी तपस्या के उपहार में तुम्हारी सहस्रों द्रौपदी की लाज लुट गई। इस दुर्दान्त व्यथा को तुम अपनी महाशान्ति के, अपनी अहिंसा के अछोर, अकूल चीर से घेरो। संभव है घेर सको।

सीता : एक पवित्र धरतीकन्यका की मर्यादा-रक्षा की एक उज्जवल स्मृति रामेश्वर का सेतु है। न्याय की भिक्षा न मिलने पर कुरुक्षेत्र का रण-स्थल अपने ही बन्धुओं के रक्त से लाल हो गया। बताओ, हमारा भविष्य किस अभिशाप की छाया के नीचे सोया पड़ा है !

मुक्ति प्रभात

अर्द्ध-रात्रि में जब विश्व की मुँदी पलकों पर स्वप्न विश्राम कर रहे थे, दिग्पथ पर नक्षत्रों के अमलिन दीप जल रहे थे और दक्षिण सागर के मेघ शिशुओं का एक दल अपनी अञ्जलि के पुष्पों को विकीर्ण करता हुआ ऊपर आकाश से पार हो रहा था, तुम्हारे आगमन का शंख-नाद सुनाई पड़ा।

सुप्त पुरातन की युग कन्या जैसे तुम्हारी बाट जोह रही थी, उसने तुम्हारे स्वागत में अपनी कोमल उँगलियों से प्रकृति की वीणा को एक नवीन झंकार से झंकृत किया। दिशायें झूम उठीं। प्रत्येक गृह-चूड़ा पर अंधकार के आवरण को भेदता हुआ हमारा इन्द्रधनुषी ध्वज उद्ग्रीव हो गया। वह घोर तिमिर-यामिनी ही हमारा पुण्य प्रभात हो गया।

जैसे किसी निरलस योगी के ध्यान में एक दिन सहसा ज्ञान का उदय हो आया हो ; जैसे शिशिर की उदास, एकान्त अवधि में एक दिन अचानक डालियों में नये पल्लव फूट आए हों और जैसे अदृश्य अज्ञात रहने वाला पद्म एक दिन प्रभात में खिल उठा हो ; उसी प्रकार हे चिरायाचित, चिराकांक्षित अतिथि, आज तुम्हारा आगमन बड़ा मधुर प्रतीत हुआ।

तुम्हारी प्रतीक्षा में हमारी अञ्जलि में अब तक और जीवन-पुष्प शेष थे जो तुम्हारे पथ में विसर्जित होते। तुम्हारी प्रतीक्षा में हमारे पग अब तक स्थिर थे, जो अंगारों पर चलते और तुम्हारी प्रथम अर्च्चा के लिए बलिपथ का हमारा यात्री समूह बिना मुड़े ही चला जा रहा था कि तुम्हारा स्नेहोज्ज्वल मुख दिखाई पड़ा।

युगाकाश में तुम्हारा उदय एक नवोदित आदित्य के समान मङ्गलमय हुआ है। तुम्हारे रथ-घर्घर में जय-पराजय, लिप्सा-संहार का कोई हास्य-रुदन नहीं है। तुम हमारे ही लिए नहीं, विश्व के लिए एक मधुर संदेश, मधुर प्रकाश बनकर आए हो। हे भारत के मुक्ति प्रभात आज तुम्हारा स्वागत है।



दीप मालिका

इन अगणित दीपों का प्रकाश आज किसे खोज रहा है ? वर्ष-भर के नहीं, युग-युग के जन्म-मरण, आलस्य-संघर्ष और हर्ष-विषाद के सिन्धु को पार कर जो जीवन वर्तमान के तट तक आ लगा है, वह अपने हृदय-देश में यह दीप-मालिका सजाकर किसकी अगवानी कर रहा है ?

गृह-गृह की दीप-राशि से, मुक्त शान्त वायु में फहराती हुई राष्ट्र ध्वजा से नील गंभीर दिशाओं का हा-हा स्वर बिना टकराये ही दूर-दूर बह गया है और काल की उन्मुक्त धारा जैसे आज निराशा के तट को छोड़कर बह रही है !

इस आनन्द-मुहूर्त में प्रत्येक का हृदय अपने में नहीं समा पा रहा है । ओह, वह कौन-सा असाधारण अतिथि है, जो आज रात्रि-भर एक मधुरतम स्वप्न बनकर पलकों पर विश्राम करेगा ! इन अगणित दीपों का प्रकाश आज किसे खोज रहा है ?

अंधकार

जब तुम्हारे आवास के दीप बुझ गए हैं और अंधकार
तुम्हारे द्वार को तोड़कर भीतर घुस आया है;
तुम शान्त और स्थिर हो तथा तुम्हारी प्रार्थना
का स्वर अचंचल है। हे अमर साधक, तुम्हें
प्रणाम है!

तुम्हारे स्वप्न का पथ आगे बढ़ता है, हम उस पर
आगे बढ़ते हैं और वह सत्य होता चला जाता
है। किन्तु द्वेष के महा असुर ने आज पुनः
तुम्हारे स्वप्न को ललकारा है। तुम्हारा विश्वास
हिमालय सा अटल है। हे मानवता के
स्वप्न-द्रष्टा, तुम्हें प्रणाम है!

आज भ्रातृत्व रक्त की बाढ़ पर उतरा रहा है; देश का
पग अवांछित पथ की ओर अग्रसर हो गया है
और तुम्हारी अमृत वाणी को आत्म-विनाश
के महा-रव ने ढँक लिया है। फिर भी तुम
पराजित नहीं हुए हो और यह आहत देश
तुमसे अमृत पाकर पुनः जीवित हो उठेगा।
हे बन्धुत्व के संदेश-वाहक, तुम्हें प्रणाम है!

एकाकी मानव !

तुम्हें प्रणाम है !

इसलिये नहीं कि तुम्हारा पथ सहचारियों के स्वर-संगीत से मुखरित है और विश्व आज तुम्हारा वन्दन कर रहा है; प्रत्युत आज इस गहन अंधकार में तुम्हारे पग अडिग भाव से चलते जा रहे हैं। इसलिये ओ एकाकी मानव, तुम्हें प्रणाम है !

तुम्हें प्रणाम है !

इसलिये नहीं कि तुम्हारी प्रेरणा से देश आज स्वतंत्र हो गया है और राष्ट्र का सिंहासन आज विश्व के सिंहासनों में भास्वर हो उठा है; प्रत्युत आज इस अभागे देश के रक्त-रंजित गात्र पर तुम्हारा स्नेह-स्पर्शी हाथ है। इसलिये ओ राष्ट्र-पिता, तुम्हें प्रणाम है !

तुम्हें प्रणाम है !

जय-पराजय, घात-प्रतिघात और संहार-प्रतिसंहार में धर्म और संस्कृति विचलित होगई है। ओ मानवता के महापथ के यात्री, यदि तुम्हारे अंतिम पथ पर तुम्हारे स्वजन निम्न-पथ पर ही थक कर रुक जायँ तो भी तुम्हारे चरण बढ़ते जाँय ! तुम्हारा धर्म सहचारी रहेगा। हे युधिष्ठिर, तुम्हें प्रणाम है !

पश्चिमी पंजाब से

पश्चिमी पंजाब में जहाँ हमारी चार नदियाँ बहती हैं। हिमालय की चूड़ा से अमृत ढोती हुई प्यारी नदियां उन्ही के किनारे-किनारे......

पश्चिमी पंजाब में जहां हमारी प्रलम्ब भुजाओं ने पाताल से चट्टान काटकर प्यासी धरती के लिये जल लाया था, उसी धरती के किनारे-किनारे......

तक्षशिला, निद्रित पाषाण, चाणक्य के गुरुकुल की प्रसुप्त समाधि! विदेशी यवनों के पराभव का हमारा ऊर्ज्जस सीमाचिह्न, तुम्हारे ही किनारे-किनारे......

यह हमारा भूखा-प्यासा, रक्त से लथ-पथ, थका हुआ, निद्राविहीन, यात्रीदल चला आ रहा है। आज हमारी ही भूमि अंगार का पथ बन गई। आज हमारी ही हवा आघात कर कर रही है। आज हमारा ही भाई हमारे शरीर को रक्त से नहला कर विदा कर रहा है।

स्वतंत्र भारत, तुम्हारे इस मुक्तिप्रभात के शंखनाद और नकारे के तुमुल स्वर में, तुम्हारे आह्लाद और उल्लास की अविरल प्रकाश-वर्षा में, तुम्हारे सुख के मधुर उन्माद से कुछ दूर पर यह हमारा यात्रीदल दुःख-दर्द की रात में आहें भरता हुआ पार हो रहा है! हमारे शरीर से रक्त की एक-एक बूंद गिरती जा रही है और हम अपनी स्वतंत्र सीमा की ओर बढ़ते आ रहे हैं। हमें कहाँ अवसर है, जो फूल-सा नकुल, प्यार-सा सहदेव, पराक्रम-सा भीम, विजय-सा अर्जुन, और प्राण-सी द्रौपदी छूट गई हैं—उन्हें मुड़कर देखें? हम आगे बढ़ रहे हैं। हमारा सर्वस्व खो गया है; किंतु हमारा धर्म और अपने राष्ट्र का प्रेम हमारे साथ आ रहा है।



सन्ध्या

सन्ध्या, अपनी वीणा के रश्मितारों को प्रार्थना के स्वर में भर लो। आज तुम्हारे आलोक-निलय के सुदूर एकांत में इस महात्मा की प्रार्थना मुखरित होगी।

सन्ध्या, सिन्धु के नील, गंभीर अंचल पर अपनी सोने की नौका आज अपने उज्ज्वल कमलों की माला से सज्जित रखना। आज हमारा यह महायात्री अपनी इस दीन-हीन धरती की परिक्रमा पूरी कर अनन्त विश्व की यात्रा के लिए प्रस्थित होगा।

सन्ध्या, आज इस आतिथ्य-गेह का संगीत महा विराग के स्वर में झंकृत हुआ है......"यह संसार कैसा अपरिचित है, मैं यहाँ यह खेल कब तक खेलता रहूँगा......?" कुछ क्षण पश्चात् जब तुम अपने मेघ-करभों की पंक्ति क्षितिज तक ले आओगी और सिन्धु-कूल पर अनन्त अर्च्चा का शंख-रव मुखरित होगा, यह आवास सूना हो जायगा।

सन्ध्या, आज हम सहचारी गण स्मृति के रुदन-लोक
में यहीं छूट जायँगे। हमारा बापू अब तुम्हारे
ही स्कन्ध पर हाथ टेके प्रार्थना के महामंदिर
की यात्रा करेगा।

सन्ध्या, आज तुम हमारे नमस्कार से मिलकर महा-
नमस्कार बन जाओ ! आज हमारे संगीत से
मिलकर तुम महासंगीत बन जाओ ! आज
हमारे रुदन में डूबकर तुम करुणा का महासिन्धु
बन जाओ ! आज हमारा बापू हमसे विदा हो
रहा है।

धरित्री

माँ धरित्री,

तुम्हारे अश्रु ने तुम्हारे इस प्रिय पुत्र का मुख सदा सकरुण रखा। तुम्हारे अमित स्नेह ने इसके हृदय को सदा प्रेम से परिपूर्ण रखा और तुम्हारी चिर कामना ने इसके जीवन को एक महापुरुष में परिणत कर दिया।

माँ धरित्री,

आज यह तुम्हारी गोद का रत्न, तुम्हारे दीन-हीन आवास का उज्ज्वलतम शृंगार, तुम्हारी करुणा का महासंगीत देश-काल की परिधि लाँघकर अनन्तता में विलीन हो गया। हाँ, आज वह तुम्हारी अर्चा का पवित्र दीप परम आराध्य के चरणों में विसर्जित हो गया।

महाजननी,

इसके आगमन ने तुम्हारे आँगन का अमंगल दूर हो गया है। तुम्हारे अंधकार-भरे गृह में सत्य और अहिंसा का आलोक पुनः भास्वर हो उठा है। आज तुम्हारा वह सपूत शांति का हंस बनकर नक्षत्रों के लोक में तुम्हें नमस्कार अर्पित करता हुआ जा रहा है।

नक्षत्र

नक्षत्रो, अपने लोक का पथ आलोकित करो ! आज
पृथ्वी का महापुत्र यात्रा कर रहा है ।

सिंधु-कन्यकाओ, अपने मेघ-कलभों का शृंगार करो
और उन्हें संध्या के नील-लोहित देश में
खड़ा करो !

धरित्री, अपने कानन-पुष्पों की माला निःशेष मधु के
साथ अपने इस महा अतिथि के यात्रा-पथ
पर विसर्जित करो !

और हे तपोधन सूर्य, अपने इस अथक रथ-को
प्रतीची के प्रार्थना-द्वार पर रोक लो ! तुम्हारा
सहचारी जो अब तक धूलि-भरी धरती पर
तपता रहा है, तुम्हारे साथ अनंत लोक की
यात्रा करेगा ।

आज की संध्या अपने उदासीन बंधु की विदाई पर
बावली-सी आगे दौड़ी जा रही है । उसके
पीछे ही इस पुण्यात्मा का कोमल पद-चाप
सुनाई पड़ेगा ।

रात्रि

रात्रि, इस अपवित्रता को ढक दो ! इस कलंक को अपनी समता में कमल की छाया बना लो और महात्मा के इस निर्दोष रक्त को अपनी कम्पित अंजलि में लेकर उन नक्षत्र-शिशुओं का तिलक कर दो, जो आकाश के नील वातायन से अपलक झाँक रहे हैं।

रात्रि, उस अबोध बालक पर जिसने अपनी ही नहीं, संसार की आँखों का उजाला खो दिया है, उस पर करुणा करो ! उसके क्रोध और पश्चात्ताप के अंगार पर अपनी सजल ज्योत्स्ना की वर्षा करो।

रात्रि, भारत के इस महानगर में महात्मा गांधी की मृत्यु पर हँसने वाले भी कुछ व्यक्ति विद्यमान हैं। यह कैसा सत्य है ! उनका रुदन खो गया है। तुम निःशेष प्रहर तक अपने आँसुओं की माला गूँथो जिससे उनकी आँखों की मरुभूमि सजल हो जाय।

रात्रि, आज तुम्हारी झंकार में तुम्हारे इस सहचारी का प्रार्थना-स्वर मौन-मौन ही बहता रहेगा। आज तुम्हारे शय्यागृह में उसका निष्कम्प गात्र करवट नहीं बदलेगा। आज तुम्हारे नक्षत्र-ज्योतित पथ पर उसकी स्निग्ध-दृष्टि तुमसे रहस्य-संलाप नहीं करेगी और उसकी मुंदी पलकों में आज इस अतिथि-गृह के स्वप्न-शिशु हठ करके भी प्रवेश नहीं पा सकेंगे।

रात्रि, ये कुमारियाँ और देवियाँ जो अभी तक उसके पार्श्व में बैठी हुई अपना अश्रु-सिक्त मुख अपने मुक्त कुंतलों में छिपाये अपने चिराराधित श्रद्धा, स्नेह को बिदा दे रही हैं, तुम्हारे ही साथ जागती रहेंगी और इस निरलंकार कक्ष में जहां एक करुण राग से भरी हुई एक सारंगी पड़ी है, इस शांति के अनंत सिंधु के तट पर एक मुक्ति-दीप जलता रहेगा।

रात्रि, प्रभात कब होगा? पूर्ण मानवता का प्रभात कब होगा?



महा मिलन

प्रभु, मैं अपने पथ में विलम्ब कर गया। पृथ्वी के दुःख ने मेरे चरण में शृंखल डाल दिए। मैं तुम्हारे नाम का सम्बल लिए इस भार को ढोता चला आ रहा हूँ। हां, प्रभु, मैं इसी कारण तुम्हारे मन्दिर में कुछ विलम्ब से पहुँच पाया।

प्रभु, मेरे जुड़े हुए हाथों में तुम्हारा ही नमस्कार तो मुद्रित था! मेरी वाणी में तुम्हारी ही स्तुति तो गुँथी हुई थी और मेरे प्रेम में तुम्हारा ही मुख तो आलोकित हो रहा था! हाँ, तुम्हारी ही करुणा के छन्दों ने मेरे पथ को प्रलम्बित बना दिया।

प्रभु, मैं अब तुम्हारे मन्दिर तक आ गया हूँ। कर्त्तव्य की सारी सरणि मेरे थके पैरों के नीचे रह गई हैं और मैं सबसे विदा लेकर तुम्हारे आगे नत-मस्तक हूँ। मिलन के इस महा मुहुर्त में मृत्यु का द्वार खोलकर तुम मुझे अपने चरणों में ले लो! प्रभु, तुम्हारे नाम की जय हो!



स्मृति तीर्थ

हमारा यह आवास बापू की समाधि से दूर नहीं है। जब सदानीरा यमुना का संगीत उस समाधि की परिक्रमा कर देश-देशान्तर के लिए प्रस्थित होता है, हमारी यह कुरुभूमि वेदना से सिहर उठती है।

नित्य कोमल उज्ज्वल प्रभात में और करुण मधुर सन्ध्या में जब इस राजनगर का तट-देश प्रार्थना से भर उठता है, हमारा हृदय एक बार अनन्त के नमस्कार में मुद्रित हो जाता है।

बापू की समाधि से वे स्थान भी दूर न होंगे जहाँ भीष्म द्रोण के चिताभस्म पड़े होंगे। अक्षय नील आकाश के नीचे निभृत वन-कान्तार और यमुना की श्वेत शान्त सैकत-पथरेखा हमें अपने इतिहास के महा विस्तार तक ले जाती है और हमारी अश्रुभरी दृष्टि न जाने क्या-क्या ढूँढती रह जाती है।

पथ की पुकार

बापू की जो यात्रा कभी साबरमती के तट से आरम्भ
हुई थी क्या वह पूरी हो गई ?

बापू की वह प्रव्रज्या जो कभी नोआखाली में अनुष्ठित
हुई थी, उसका उद्देश्य क्या पूरा हो गया ?

और बापू ने चरखे तथा अहिंसा का जो संदेश दिया
था वह क्या विश्व के अशान्त हृदय तक पहुँच
गया है ?

यदि नहीं तो......

आज हमारी प्रव्रज्या क्यों रुक गई ? सेवा का
मधुर कष्ट-भरा हमारा जीवन विश्राम और सुख
के लिए क्यों आकुलित हो उठा ? और हमारे
पग अपने लक्ष्य के कंटक-पथ की धूलि छोड़ कर
सिंहासन और प्रासाद की ओर क्यों बढ़ने
लगे ?

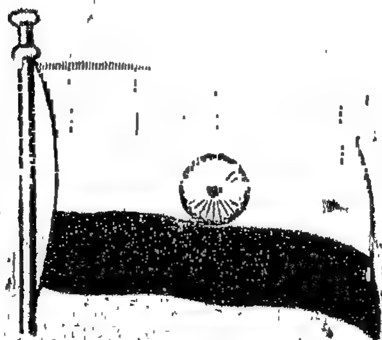
स्वतन्त्र भारत के गाँव

भाइयो, देश स्वाधीन हो गया है, हल चलाओ—हल चलाओ! तुम्हारा धन-धान्य अब तुम्हारे ही पास रहेगा। यह विस्तृत धरती तुम्हारी है। ये सुन्दर पर्वत, ये साल, महुए तथा बाँसों से भरे जंगल तुम्हारे हैं। ये गीत गाती हुई नदियाँ और ये सुहावने मैदान तुम्हारे हैं।

बहनो, देश स्वाधीन हो गया है। तुम्हारा मंगल-गीत सुनने के लिये तुम्हारे खेत आकुल हैं। गीत गाती हुई तुम इन पर बीज बिखराओ और इन्हें हरा-भरा बनाओ! तुम्हारा घर-आँगन कुरूप पड़ा हुआ है—इन्हें सँवारो!

बच्चो, आज अपने स्वाधीन देश के गाँवों, नदी-तटों, जंगलों और पर्वतों को अपनी बाँसुरी की तान से गुंजित करो ! अपनी गायों और बछड़ों को घासों के मैदान में हांक ले चलो। तुम्हारे देश में दूध की नदियाँ फिर से बहेंगी !

देश के कारीगरो, तुम्हारी चाक से अब बिना रुके हुए मंगल-कलश निकलते चले जाँय ! तुम्हारे बंसले और रुखान से सबल हल और जूए तैयार होते चले जाँय ! तुम्हारी भाती और घन से सबल फाल, कुदाल और हँसिये तैयार होते चले जाँय ! तुम्हारे हाथ से पके बांस की सुन्दर टोकरियां तैयार होती चली जाँय ! तुम्हारे करघे से रंग-बिरंगे कपड़े बनते चले जाँय ! और लाख से पुती हुई तुम्हारी नौकाएं नदियों में पाल उड़ाती रहें !



नृत्य भैरव

हे रुद्र !

जो तुम्हारे ललाट पर धक-धक करती हुई अग्नि-शिखा की स्फुलिंग है उससे अंधकार के गृह में प्रदीप जल उठा है—उसी की शिखा से लोकालय में सहस्रों नरनारी के हा हा ध्वान से निशीथ रात्रि में गृहदाह उपस्थित हो गया है।

हाय शम्भु ! तुम्हारे नृत्य में, तुम्हारे दक्षिण और वाम पद-विक्षेप में, संसार का महा पुण्य और महा पाप उत्क्षिप्त हो उठा है !

—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

नृत्य भैरव

नाचो निशा,
नाचो अंधकार,
नाचो दिशा,
नाचो पारावार,
नाचो संसार !

नाचो उत्तप्त धरा,
नाचो स्वयंवरा,
नाचो मेघ, नाचो वज्र,
नाचो झंझा, नाचो वात्या,
नाचो प्रलय, नाचो दुर्जय !

नाचो रक्त,
नाचो शिरा,
नाचो प्राण,
नाचो गिरा,
नाचो हृदय,
नाचो निर्दय !

नाचो अंध विश्व तरुण,
नाचो अकरुण, नाचो सकरुण,
नाचो शस्त्र, नाचो सैन्य,
नाचो गर्व, नाचो दैन्य
मृत्यु-पर्व !

नाचो नाचो दारुण दैत्य-क्षुधा,
नाचो रिक्त मलिन वसुधा,
रुधिर-सिक्त नाचो अंतरिक्ष,
नाचो दुर्भिक्ष !

नाचो नाचो हा-हा-ध्वान-
ध्वक-ध्वक-ध्वक
नाचो श्मशान,
नाचो कंकाल,
रुण्ड मुण्ड-माल,
नाचो गरल-दन्त
ओ रे महाकाल !

नाचो स्तब्ध वन-प्रान्त,
श्रान्त शिशिर सान्ध्य वात,
हर हर दिशि, निशि-निशित सरित,
व्याकुल निखिल उर्म्मि-अवलि
संतरण-क्षुब्ध
सिंधु-कूल, ग्राम, कुटी,
नाचो मर्माग्नि अटवी !

घन तमच्छाय
शृंखलाबद्ध निरुपाय
नाचो प्रिय स्वदेश !
उत्क्रान्त वेश,
नाचो कारागार !
नाचो हाहाकार !!

चीन

यात्री तुम
चिर युगीन बन्धुर-पथ,
रहे किन्तु अश्लथ-पग
तुम तो ओ बन्धु चीन !
तुमने देखा विशाल
हिम किरीट भव्य भाल
भारत का—नहीं—मित्र,
विश्व का स्नेह-शिखर,
चारु चित्र गौतम का
सुखासीन !

बहता प्रकाश अम्बर अकूल में
निराकार नीहार वृष्टि,
सुधा सलिल निर्मल उज्ज्वल
से सजल सृष्टि,
ओ मुग्ध पथिक,
ओ मधुर-दृष्टि,
तुमने देखा मर्बलित दिग् दिग् ;
फिर गिरि-वीथी पर बढ़े चरण
आकुल चंचल
अंचल छूने को अचल मध्य के ;
लांघे निर्जन वन गहन
उपल दुर्गम सर संगम ;
रह गए निम्न तल पर
तम-संकुल
जगती के जड-जंगम—
तुमने किरणों का किया वरण !
ओ प्रिय मुमुक्षु,
ढूँढ़ा तुमने, पाया अपना
वरदान दिव्य, निर्वाण लक्ष्य,
ओ बौद्ध भिक्षु !

कोमल पावन पदचिह्न तुम्हारे
बने नहीं क्या इस आँगन में
अब तक सुन्दर
जिनको हमने सदा स्नेह से
गो दे देरे !

मृगदाव के चपल कुरंगम
निज ग्रीवा के मधुर भंग से
नहीं खोजते क्या अब तक—
अपना परिचित काषाय वस्त्र,
विश्वस्त हृदय वह तपःपूत—
तुमको करुणा के विश्व-दूत !

ओ अतिथि !
आज आये फिर तुम
अपने आश्रम को पुनः
शक्ति संचय करने को ।
आओ स्वागत में भारत का
है मुखर शान्ति का शंखनाद ;
हैं सारनाथ के खड़े स्तूप
ले विश्व-प्रेम की अमिट याद !
इनके नीचे आओ क्षणभर
ओ फाहियान के दिव्य रूप ;

सोचो तो......

यह विकट दाह फ्यूजीयामा का
जला सकेगा क्या हृत्तल को
इस प्रशांत महा सागर के ?
वह स्वयं बनेगा तृषित विकल
जब स्वार्थानल की आहुति में
होंगे उसके जीवन-उत्पल—
अंधकार का भ्रांत बन्धु वह
सिंधु तीर पर खड़ा रहेगा
श्रांत क्षीण स्वर में गाता—

वह अनय विभव का निठुर भूत,
अवशिष्ट पिपासित वर्तमान
लेकर जर्जर जापान।

उसकी स्मृति में श्मशान
अगणित शिशुओं के
स्तब्ध रुदन से
मुखर रहेंगे विद्यमान!

तब होगा चेतना-दीन
वह हृदय-हीन,
अपने अतीत के स्नेह-मार्ग का
अनुतीर्ण!

तुम नहीं पराजित कभी दिव्य,
यह तम का है बस क्षणिक युद्ध
यह पथ दो पग कंटकाकीर्ण,
तुम मलिन नहीं, तुम चरम ज्योति,
ओ भिक्षु चीन! ओ बौद्ध चीन!!



फ़ुटपाथ

'फ़ुट पाथ' पर सोया बालक
पलकों पर श्रम-भार,
अलकों में धूल भरी, उर में अंगार,
यही शृंगार !
बहन मल रही तसली उसकी
मैली सी साड़ी है, बिखरे से केश-पाश
दिन भर की भूख-प्यास
के ज्यों उच्छ्वास !

कुछ बच्चे पत्तल टाँगे,
अचपल-दृग बिन माँगे,
खड़े हैं काले नंगे,
दूर अभिमान, भय,
दैन्य ज्यों प्राणमय !

बूढ़े कुछ बैठे हैं,
जमात के मुखिया वे,
अकड़े हैं, ऐंठे हैं।

पास में ईंट के चूल्हे हैं वलते ;
दो डब्बे चाय वाले कांप रहे भाप से ;
जीवन अभिशाप के मुट्ठी भर दानों से
इनके दिन ढलते ;
ये जलते !

टूटी और फटी हुई
चटाइयां खजूर और नारियल की
पत्तियों की टंगी हुई हैं,
पास की टीन की काली दीवार मे।
प्यार के महल इनके, सुख के संसार,
वर्षा में, धूप में इनके विश्रामस्थल
मृदु हाहाकार
जैसे साकार !

काजल सी काली, रूखे केशों वाली
स्तन जिनके कंचुकी-हीन,
वस्त्र शतछिन्न,
ऐसी माँ बहनें, बना रहीं भोजन, कुछ
सुला रहीं बच्चों को, निर्बल-नग्न,
जीवन में खिन्न यौवन-शाली
दुःख-तल्लीन !

हाय, ये कुमारियाँ, नील पद्म काँच पर-
ज्यों दीखती हैं दूर, अपने सौन्दर्य के-
ज्ञान से ; सींच कर दृष्टि-पथ,
दुस्सह उपहास से जो भावी का मार्ग-मुखर
ढेलती हैं सृष्टि-रथ,
रे अकथ !

जा रही भीड़ बड़ी 'ब्रिज' पार करके
सहस्रों धनवान, सुन्दर-छद मद-मंथर,
भारत के श्रेष्ठतम नगर के श्रेष्ठीगण,
सान्द्र हैं नीड़, तुंग प्रासादों के,
अप्सर किशोरियों की नूपुरों का गूँज रहा
मधु सिंजन
झननन, झन
झनन !



रुको विश्व !

रुको विश्व !
यह अंधकार है !

पथ भूला है, अमित ज्ञान है,
इधर लक्ष्य का कहाँ द्वार है !

चले जहाँ से वहीं लौटना
यात्रा का यह नहीं रूप रे ;
क्या उन्नत मानवता का
यह महा ध्वंस ही पुरस्कार है !

अगणित शिशुओं के ये श्मशान
हैं घेर रहे प्रासाद नगर;
भोले तरुणों के हृदय-रक्त से
रंगा मुकुट, छी: पाप-भार है !

हृदय विद्ध कर अबल देश के
यश न मिलेगा तुम्हें क्रूर ;
शोणित-पथ पर तुम करो नृत्य,
यह विजय नहीं रे, विकट हार है !



जापान

निष्ठुर जापान,
तेरे चीवर में रक्त लग गया !
व्यंग करेगा तुझे घेर कर
चिर प्रशान्त का यह श्मशान !
चीन की छाती पर
संकुचित नहीं, जो थी उदार,
चढ़ते बन कर उपहार मधुर---
तुम सौरभ के सुमन
जहाँ होते सुन्दर सुकुमार,
वहीं हाँ—वहीं तुमने हा !
यों तक-तक कर हने बाण !
भगवान् बुद्ध के
स्नेह ज्ञान के
महायान को
अपने निर्मम पदाघात से
रौंद मिला क्या तुम्हें अधिक
उससे जो पाया एक बार था
तू रे, भिक्षुक, परि निर्वाण ?
हाय, बुद्ध की सुप्त मूर्ति—
भारत पर तेरा अस्त्र जग गया ?
निष्ठुर जापान,
तेरे चीवर में रक्त लग गया !

भग्ननीड़

धवल शिखर पर
चढ़ तुषार की धाराओं से कहो—
उतर आयें वे नीचे,
आग बह रही है पृथ्वी पर,
उसको सींचें।

मानव का दानवी रूप
हो रहा आज भैरव-नर्तन-रत,
शत शत ज्वालायें घिरती हैं
क्षुब्ध-सिंधु के आलिंगन को,
हैं पुकारती दिशा निशा में
निज प्रकाश के उज्ज्वल दिन को !

आभग्न नीड़ हो गए नगर ;
खँडहर, टीले, समाधि, संस्थल
बन गए सौध, विश्राम-कक्ष,
मदिराप्लुत बेसुध लास्य-गेह,
लीलागृह, केलि सदन संचल !

चंचल विलास, अतृप्त प्यास, क्रीड़ा-विद्युत
शृंगार साज, वे हाव भाव, वे राग रंग सब
प्रलयंकर के गीत बन गए !

पृथ्वी, सागर, आकाश, आज है मृत्यु-मुखर
शस्य-श्यामला भूमि वधस्थल !
अनल गिराता जलदों का आवास—
आज गीला नीलाम्बर ;
उर्म्मि-अधर आकुल जलता है
सागर का अन्तरतल ;
प्रति पल होता अशनिपात रे !
महानाश का अट्टहास रे !
कहाँ अमृत के आज घन गए ?

तिरो विश्व

तिरो विश्व,
रक्त की धार में !

धूल में गिरा शान्ति का केतु,
घिरो विश्व, घिरो अंगार में !

जल-थल-नभ है मृत्यु-मुखर,
चल रहा ध्वंस का चक्र प्रखर,
तुम चलो अथक आहत-शरीर
पलो विश्व, प्रलय के प्यार में !

हिम तुषार की नहीं धार,
चाहती पिपासा विजय हार ;
किसलय फूलों का गीत कहाँ—
सजो विश्व, शस्त्र-शृंगार में !

निद्रा है, हँस रहा तिमिर,
अस्थिर सपने मिटते घिर-घिर ;
भेद कर क्या जाओगे मुग्ध—
बहो विश्व, नैश झंकार में !

कला अर्च्चा में कलकत्ता नगरी

स्वागत कवि,
उज्ज्वल-छवि,

गायक, गंधर्व,
सृष्टि के चिर सौन्दर्य,

स्नेह ज्ञान करुणा के
दिव्य दूत !
नमस्कार, शतबार
नमस्कार !

तेरे मृदु ज्ञान में
मधु विश्राम
स्वप्न की छाया सी,
नूपुर-ध्वनि, अलका-किशोरियों की,
वीणा-निक्वण पर आनर्तित केका-दल,

आमोदित चन्दन-तरु
पारिजात, अम्लान
स्फटिक-गिरि-क्रोड़ का
क्रीड़ा-सर,
केसर से पीतारुण
उत्पल-वन,
शान्त शिशिर मलय वात से
पुलकित-तन तट-प्रान्त,
केलि-श्लथ, चक्रवाक,
सारस, पिक, कल-गान,
मृणालों के कुंज में
मंजु-रणित हंस-मिथुन,
गन्धर्वों का अभिसार,
नीहार का स्वप्न लोक,
संगीत अन्तरिक्ष का,
शून्य का छन्द-देश—
निस्तरंग, निरानन्द—
ज्ञान का मधु पद्म—
सहस्रार !

×

स्वागत, ओ कलाकार !
हृदय के स्नेह-भरे—
भावों की माला से
बार बार !

तेरा अनुराग
मेरे विनीत इस

वैभव विलास पर,
कृपा तेरी मेरे उल्लास पर,
मधु का दान, मेरी इस प्यास पर,

आभारी है हृदय, अतिथि !
दृग-वीथी हेर रही अर्चा का;
गंगा की फेनिल तरंग पर
गगन-भेदी मेरा यह लौह द्वार,

नृत्य-मुखर सौध- शृंग,
नगर-रमणियों के चञ्चल दृग-कोरकों से
कुवलयित गवाक्ष, कक्ष,
चित्रित अलिन्द-माला
विलुलित दुकूल से,
विपुल संचारमयी नाट्य-शाला,
पण्य-हाट, राजपथ रथ-संकुल,
दीर्घायत कामना सी
स्वागत में हैं—
अभ्यागत !

... ...

... ...

किन्तु .....

कवि,
दृष्टि तेरी आहत सी
दीर्घ मलिन छन्द में निस्पन्दित

देख रही किस ओर ?
सुन लिया क्या तूने—
मेरी सुख-छाया में
कोई दैत्य खल-खल कर हँसता है,
विलास के गर्त पर
भर रहा वन्या सा
दैन्य का अट्टहास !
तेरा वह मधुर मर्म
घिर रहा चीखों से !

भिखमंगे नर-कंकाल
उदर की ज्वाला में
होम रहे जीवन के क्षत शतदल;
दग्ध अन्तस्तल
छा रहा दिगन्त में धूम्राकार,
मर्मर स्वर; मृत्यु की भिक्षा सी
माताएं देख रहीं छाया को अपनी;
निस्स्रोत स्तन से
त्वचा नोचते शिशु खिन्न,
असमय के कवल
प्रति क्षण - प्रति पल;
अस्थि-शेष देह,
मृत्यु-शेष जीवन यौवन,
अशेष चीत्कार
जन-जन का अलंकार;
भैरवी की एक तारा

गूंज रही कारा में,
शृंखल के रण-रण में
रो रहा कण-कण—
ग्राम का, नगर का,
प्रान्त का,
देश का !

मृदु-वेश !

मत देखो—
राधा और कृष्ण का नृत्य नहीं,
मृत्यु का रास यह,
बाँसुरी की तान नहीं,
मूक उच्छ्वास यह,
वृन्दावन-कूल और यमुना के स्वप्न नहीं
प्यास है – क्षुधा है –
मुक्ति नहीं – परवशता......
गीता के जयगान ?
नहीं-नहीं, हँसता हुआ दुर्दैव,
पराजय का झुका केतु,
पिस रहा देश क्लेश में,
दिग् दिग् है म्लान,
सुनो—बज रहा भैरव विषाण,
काल का सज रहा
शोण रथ, विपथ गामी,
हँसता है श्मशान !

... ...

तरुण गायक !
अपनी इस वीणा पर
भरोगे क्या वह निकारण— ?
दानवता मूर्च्छित हो,
ध्वंस के तट पर,
विंधे क्रूरता के अन्तर में
करुणा का मृदु शायक !

तेरे इस कण्ठ से
क्या फूटेगा स्वर कल्याण ?
निशाक्रान्त विश्व के दृग-जल पर
अंकित हो रश्मि-ध्यान—
उज्ज्वल प्रभात का
शान्ति-पद्म—
मधु मुसकान !



कुरुक्षेत्र

संजय :
"देव,
रुधिर के बादल घिर-घिर
अस्तोन्मुख ज्योतिःपथ
से बह गए दूर ;
विरथ रह गया नभ,
नीलोद्गम दिशागर्त
से विरल-वृन्त
हँस रहा क्रूर
अब अंधकार !

उपसंहार
कुरुक्षेत्र के यज्ञ का—

यत्र-तत्र भू-लुण्ठित
कुण्ठित-शृंगार,
धूलि-छत्र निर्माल्य,
विदलित किरीट-मणि,
भुज-बन्ध, वक्ष-रक्ष,
कटि-वेष्टन ;
निश्शब्द जय-तूर्य,
रिक्त तूणीर,

निक्षिप्त धनुर्दण्ड,
खण्ड-खण्ड परशु, गदा,
असि निशात,
भास्वर ध्वज-स्तम्भ ;
गत-घोष रथ-चक्र,
अश्व-युग्म वक्र-चरण
वक्र-शयन
हैं पड़े !

तात !
जननि !
रक्तांजलि भर दूर पर
संध्या खड़ी है
एकाकिनी !
नहीं आज कौरव-कुल-चमू के,
पाण्डवों के
शिविर के
जागते
चंचल दीप !
अभी अभिशापिनी
काँपेगी रजनी
निर्जन विराव से !

यह क्या ?
विदलित अहंकार से
मणि मुक्ताहार,
रत्न-कुण्डल, अलंकार

बिखरे हैं,
शत-शत स्वर्ण-रथ
छिन्न-भिन्न
अप्रिय दृश्य !

तीर पर रुकें—
शोणित-रञ्जित के
निश्चल पर्यंक पर
निर्मुकुट कौरव-कुमार
उत्फुल्ल-मुख
मुद्रित से नमित से
प्रेषित करते हैं ज्यों
देव ! माता !—
चरणों में नमस्कार !

क्षीण स्वर बह-बह कर
आता है......
माँ, पुत्रवती तू,
पति-प्राणा, महती सुहागवती !
लो प्रणाम !
पिता लो प्रणाम !
संग्राम से नत-सिर
लौटा नहीं एक भी पुत्र ;
गर्वोन्नत दुर्योधन
दीप्त है आज भी
मृत्यु सिंहासन पर !

....

"कुछ दूर पर
पीछे—

कौरव कुल-वधुओं का
दारुण क्रन्दन-निनाद
विषाद की छाया-सी
छा रहा सर्वत्र !
अ-मृत वीरों की
रण-शय्या
अस्थिर अधीर सी
हो उठी एक बार
करुणतम पुकार से !
नामोच्चार कर रोती,
भाल पीटती हुई,
केशों को खींचती,
मेटती सौभाग्य-कुंकुम,
फेंकती आभूषण—
माताएँ, बहनें, कुल-बधुएँ
आ रहीं अर्घ्यदान को
श्मशान में !

... ...

गान्धारी—

नीरांजलि
छल-छल
अश्रुधार !
वेदना-लोक में खड़ी
गान्धारी के मुँदे नयन

देख रहे पुत्र-रक्त से
आरंजित कण-कण
दुःख वेग से घिरी गिरा
में फँसा हुआ अभिशाप,
हाय, किस महापाप
का सृजन—
यह अशेष
कुल संहार,
हाहाकार !
मर्माहत उर में
शिशु सा खेलता हुआ
टकराया प्रकाश,
पास आ गए थे
पीताम्बर
नीलोज्ज्वल शैल-देह
भारत महा यज्ञ के सूत्रधार।

श्रीकृष्ण :

गंभीर शान्ति से
"शान्त हो गांधारी !
कौरव-कुल की वह
वक्र रेखा अन्त में
खींच गई यही चित्र !
यह दुर्दयनीय कुल-क्षय
संचय था अनय का,
जघन्य भ्रातृ-द्रोह का
अधर्म-अपकर्म का !

अब विषाद व्यर्थ है !
पांडवों की विजय भी
आज अवसाद है
निराह्लाद !

... ...

"रहने दो-
कृष्ण !
यह विष-पान
सरल नहीं उतना-
रणोन्मत्त युद्धस्थल
का सूत्र-संचालन ज्यों—
विजय का शंख-ध्वान !
हाय, शत-पुत्र-जनन
वन्ध्या है आज !
वृष्णि-बाल !
स्मरण रहे,
कौरव कुल-दाह के
नीति-निपुण अभिनेता !
तेरे दृग-युग्म भी
भीगेंगे एक बार
यदु-कुल-नाश से !

... ...

दीर्घोच्छ्वास में
मूर्च्छिता गान्धारी,
कम्पित-पग धृतराष्ट्र—
"गान्धारी !
गा न्धा...
गा... ...

हिरोशिमा

हरी भरी दूर्वा
के नीचे पड़ी—
यज्ञ की अन्तिम आहुति,
ओ हिरोशिमा,
जाग पुनः !

मानव के
पाशव महाकाव्य की
इति की रेखा
हाय, बनी तू !

विश्व-युद्ध किसकी भिक्षा है,
महा ध्वंस किसकी दीक्षा है,
किसकी एक पिपासा पर
बह गई धरा पर
शोणित-धारा—
समझ न पाई स्वयं, भला
समझा क्या पाती
रक्त-सनी तू !

अग्नि बरसती रही गात पर
तेरे कबतक, अनजान
ही रहा ; दृष्टि से
सहसा क्षण में छिनी गई
तुझ से वह कोमल
सागर-चुम्बित
नभो नीलिमा.

ओ हिरोशिमा,
जाग पुनः !

थंभ गया चक्र
आकर तेरे
उस करुण-कण्ठ में,
फूट न पाया आर्तनाद भी
लहरों से जो रहीं
करुणतम तट को घेरे।
तेरा विषाद
हो गया अतल जब
उस प्रशान्त महा सागर सा,
म्लान बन गया
गरल पान कर
दिग् दिगन्त का, दर्प-दीप्त
वह दूर क्षितिज का
प्राची मुख !
आपान सा गया,
घिरी अमा !

ओ हिरोशिमा,
जाग पुनः !

जागे तू फिर नव प्रभात में,
नवल ज्योति में, नवल गात में,
नयी शक्ति ले
नयी दृष्टि ले—नयी सृष्टि ले—
अंकुरित तुम्हारा हो जीवन !
स्तवन-छन्द से
अमर जागरण
का फिर से कर तू अभिनन्दन !

थका विश्व
कंटकित-चरण
देखे आशा के दृग् भर-भर —
ज्वाला पीकर धरती तेरी
है मिटी नहीं, सस्नेह मधुर
वह है पुकारती—
क्षमा ! क्षमा !!

ओ हिरोशिमा,
जाग पुनः !

युगोन्मेष

किरण, प्रात-पथ उतर !
रात्रि गई, ज्योति की तृषा,
आकुलित अरुण अधर !

स्वप्न घुले ध्वान्त के विपुल,
गान खुले प्राण के मृदुल,
ज्ञान बहा चेतना-मुकुल-
प्रान्त में मर्म-मुखर !

जीवन की विगत वीथिका,
मन्द चरण, द्वन्द्व-भीति का,
मुक्त आज, मार्ग में टिका
लखे विश्व लक्ष्य-शिखर !

